The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 10 | October 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF(2026): 5.6
Website: www.theacademic.in

नालंदा के मंदिर और संघाराम: वास्तुशिल्पीय विकास और अनुष्ठानिक परिवर्तनों का पुरातात्विक विश्लेषण

Jatin

PhD Research Scholar, Department of Buddhist Studies, Faculty of Arts

University of Delhi, Delhi – 110007, India,

**Corresponding author*-Email: Jatin.du.phd@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.24463422

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Received: 31-10-2026

Accepted: 05-11-2026

Published: 20-11-2026

Keywords:

चैत्य, गुप्तकाल, नालंदा, पालकाल, बौद्ध स्थापत्य, विहार

ABSTRACT

नालंदा महाविहार का पुरातात्त्विक स्थल भारतीय उपमहाद्वीप में बौद्ध मठवासी स्थापत्य के विकास का महत्त्वपूर्ण स्तरिकीय अभिलेख प्रस्तुत करता है। यह शोधपत्र उत्खनन प्रतिवेदनों, यूनेस्को के नामांकन दस्तावेज़ों तथा भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के संरचनात्मक प्रलेखन के आधार पर विहार और चैत्य के कालानुक्रमिक विकास का अध्ययन करता है। इसका केंद्रीय तर्क है कि नालंदा का स्थापत्य परिवर्तन केवल भवन-योजनाओं में नहीं, बल्कि संरचनाओं के क्रमिक निर्माण, मरम्मत और पुनर्निर्माण में भी दिखाई देता है। स्थल संख्या 03 में सात निर्माण चरणों के माध्यम से अशोककालीन स्तूप का पञ्चायतन चैत्य में रूपांतरण दर्ज है। स्थल संख्या 01 में अधिवास के नौ स्तर प्रांगण-केंद्रित मठवासी जीवन से विहार परिसर में केंद्रीय देवालयों के समावेश तक के परिवर्तन को दर्शाते हैं। अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि नालंदा की स्थापत्य स्तरिकी बौद्ध मठवासी शिक्षा के संस्थानीकरण तथा पवित्र स्थलों के अनुष्ठानिक पुनर्विन्यास को समझने का महत्त्वपूर्ण प्राथमिक स्रोत है।

प्रस्तावना

बिहार में पटना से लगभग 90 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में स्थित नालंदा महाविहार के अवशेष प्राचीन भारत के सर्वाधिक विस्तृत उत्खनित मठवासी परिसरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा 1915 से

Disclaimer: The opinions, interpretations, conclusions, recommendations, analyses, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not reflect the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) are solely responsible for ensuring the originality, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring that it is free from plagiarism, AI-generated content, copyright infringement, data falsification, and any other form of academic misconduct.

1937 के बीच किए गए उत्खननों तथा 1974 से 1982 के दौरान पुनः आरंभ किए गए कार्यों के बाद, इस स्थल से स्थापत्य अवशेषों का एक उल्लेखनीय रूप से स्पष्ट क्रम प्राप्त हुआ है। इसमें 23 हेक्टेयर के संरक्षित क्षेत्र में स्थित ग्यारह विहार, चौदह मंदिर तथा अनेक लघु पूजोपहारात्मक संरचनाएँ सम्मिलित हैं। नालंदा को तक्षशिला अथवा विक्रमशिला जैसे समकालीन मठवासी स्थलों से अलग करने वाली विशेषता केवल इसके अवशेषों का विशाल आकार नहीं, बल्कि इसके स्तरिकीय अभिलेख की गहराई भी है। यहाँ की व्यक्तिगत संरचनाओं में निर्माण, मरम्मत तथा पुनः प्रतिष्ठापन के दो से नौ चरणों तक के प्रमाण सुरक्षित हैं, जिससे स्थापत्य स्वरूप का कालक्रमिक विश्लेषण संभव होता है। दक्षिण एशिया के बहुत कम पुरातात्त्विक स्थल इस प्रकार के विश्लेषण का आधार प्रदान कर सकते हैं। यह शोधपत्र एक ऐसे प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास करता है, जो देखने में सरल प्रतीत होता है: समय के साथ नालंदा के मठों और चैत्यगृहों की स्थापत्य शब्दावली में किस प्रकार परिवर्तन हुआ, और निर्माण चरणों का ऊर्ध्वाधर क्रम महाविहार के संस्थागत एवं अनुष्ठानिक इतिहास के विषय में क्या उद्घाटित करता है? यह अध्ययन दो प्रमुख स्थापत्य श्रेणियों पर केंद्रित है, जिन्होंने इस स्थल के निर्मित परिवेश को स्वरूप प्रदान किया। विहार एक चतुर्भुजाकार संरचना थी, जिसमें प्रांगण के चारों ओर कक्ष व्यवस्थित होते थे। यह मठवासी जीवन की आवासीय एवं शैक्षणिक इकाई के रूप में कार्य करती थी। दूसरी ओर, चैत्य नालंदा में क्रमिक विस्तारों से आवृत्त स्तूप से विकसित होकर पाँच-खंडीय (पञ्चायतन) मंदिर के रूप में सामने आया। यह अनुष्ठानिक भक्ति का केंद्र तथा परिवर्तित होती बौद्ध उपासना-पद्धतियों की भौतिक अभिव्यक्ति था। यहाँ अपनाई गई पद्धति कला-ऐतिहासिक के बजाय स्तरिकीय है। नालंदा के स्थापत्य को केवल वर्गीकृत किए जाने योग्य स्थिर स्थापत्य रूपों के संग्रह के रूप में देखने के स्थान पर, यह शोधपत्र निर्माण के क्रमिक चरणों को कालक्रमिक साक्ष्य के रूप में पढ़ता है। यूनेस्को का नामांकन दस्तावेज़ तथा 2016 का आईकॉमॉस मूल्यांकन इन चरणों का सर्वाधिक व्यवस्थित प्रकाशित विवरण प्रस्तुत करते हैं। ये भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के उत्खनन अभिलेखों और स्थापत्य प्रलेखन पर आधारित हैं। व्यक्तिगत संरचनाओं के चरणवार आँकड़ों को नालंदा के व्यापक ऐतिहासिक काल-विभाजन—मौर्यकालीन स्थापना, गुप्तकालीन उत्कर्ष, पालकालीन विस्तार तथा पालोत्तर पतन—के साथ संबद्ध करके संस्थागत परिवर्तन के स्थापत्यगत संकेतकों का पता लगाया जा सकता है। यह शोधपत्र चार खंडों में विभाजित है। पहला खंड पारंपरिक ऐतिहासिक विवरणों तथा संरचनात्मक चरणों से प्राप्त भौतिक साक्ष्यों के आधार पर नालंदा के विकास की कालानुक्रमिक रूपरेखा प्रस्तुत करता है। दूसरा खंड विहारों के विकासक्रम का परीक्षण करता है, जिसमें मठवासी स्थापत्य के विकास को समझने के आदर्श उदाहरण के रूप में स्थल संख्या 01 पर विशेष ध्यान दिया गया है। तीसरा खंड चैत्य के विकासक्रम का विश्लेषण करता है और स्तूप से मंदिर में रूपांतरण के निर्णायक स्तरिकीय अभिलेख के रूप में स्थल संख्या 03 पर केंद्रित है। चौथा खंड इन निष्कर्षों के व्यापक निहितार्थों पर विचार करता है, विशेष रूप से बौद्ध मठवासी परंपरा में स्थापत्य स्वरूप, अनुष्ठानिक व्यवहार तथा संस्थागत पहचान के पारस्परिक संबंध के संदर्भ में।

कालानुक्रमिक रूपरेखा एवं संरचनात्मक चरण

नालंदा के स्थापत्य इतिहास का काल-विभाजन अभिलेखीय साक्ष्यों, साहित्यिक संदर्भों तथा उत्खनित अवशेषों में दिखाई देने वाले निर्माण चरणों के सापेक्षिक क्रम के संयुक्त अध्ययन पर आधारित है। यूनेस्को का नामांकन दस्तावेज़ इस स्थल के विकास को तीन प्रमुख चरणों में विभाजित करता है। पहला चरण तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से पाँचवीं शताब्दी ईस्वी तक का है, जिसकी विशेषताएँ शारिपुत्र स्तूप की स्थापना और मठवासी समुदाय के क्रमिक उद्भव में दिखाई देती हैं। दूसरा चरण पाँचवीं से सातवीं शताब्दी ईस्वी तक विस्तृत है, जब गुप्तकालीन संरक्षण के अंतर्गत इस स्थल ने अपना विशिष्ट रैखिक विन्यास प्राप्त किया। तीसरा चरण आठवीं से तेरहवीं शताब्दी ईस्वी तक का है, जिसमें पालकालीन निर्माणों और संरचनात्मक परिवर्तनों की प्रमुख भूमिका रही। नालंदा में सबसे प्राचीन संरचनात्मक साक्ष्य तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में सम्राट अशोक द्वारा स्थापित उस स्तूप से संबंधित हैं, जिसमें बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में से एक शारिपुत्र के शारीरिक अवशेष प्रतिष्ठित किए गए थे। वर्तमान में यह संरचना स्थल संख्या 3 के केंद्रीय भाग के भीतर आवृत्त है और संपूर्ण महाविहार के विकास का मूल केंद्र मानी जाती है। ऐसा माना जाता है कि इस काल की प्रारंभिक मठवासी बस्ती में मिट्टी, पुआल और लकड़ी जैसी नाशवान सामग्रियों का उपयोग किया जाता था। इन सामग्रियों से निर्मित संरचनाओं के प्रत्यक्ष स्थापत्य अवशेष प्राप्त नहीं हुए हैं, किंतु उनके अस्तित्व का अनुमान बाद में निर्मित ईंटों की उन संरचनाओं के स्वरूप से लगाया जाता है, जिन्होंने उनका स्थान लिया। बाद के निर्माण चरणों में मूल स्तूप को हटाने के बजाय उसे आवृत्त करने का निर्णय नालंदा में अपनाई गई एक निरंतर प्रवृत्ति को दर्शाता है। पहले की पवित्र संरचनाओं को उनके स्थान पर निर्मित उत्तरवर्ती संरचनाओं के भीतर सुरक्षित रखा गया। इसी प्रक्रिया ने वह ऊर्ध्वाधर स्तरिकी निर्मित की, जो आज इस स्थल के प्रमुख कालक्रमिक अभिलेख के रूप में कार्य करती है। गुप्तकाल, विशेषकर पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के बाद, नालंदा के एक साधारण स्तूप-स्थल से सुव्यवस्थित मठवासी संस्था में रूपांतरण का साक्षी बना। परंपरागत रूप से शासक कुमारगुप्त प्रथम (413–455 ईस्वी) को महाविहार की औपचारिक संस्थागत स्थापना का श्रेय दिया जाता है, यद्यपि पुरातात्त्विक साक्ष्य इसके क्रमिक विस्तार की ओर संकेत करते हैं। उत्खनित स्थल की सबसे आकर्षक विशेषता सात विहारों और चार चैत्यगृहों का उत्तर-दक्षिण अक्ष के समानांतर रैखिक विन्यास है, जिसे इसी विस्तार और मानकीकरण के काल से संबंधित माना जाता है। विहारों की योजनाओं में एकरूपता—प्रकोष्ठों से घिरे चतुर्भुजाकार प्रांगण, एक प्रवेशद्वार तथा दक्षिण-पश्चिमी कोने में स्थित सीढ़ी—यह संकेत देती है कि यह व्यवस्था स्वतः विकसित होने के बजाय एक सुविचारित स्थापत्य अनुशासन के अंतर्गत निर्मित की गई थी। पाल काल (आठवीं–बारहवीं शताब्दी ईस्वी) स्थापत्य विकास के तीसरे विशिष्ट चरण का प्रतिनिधित्व करता है। इस अवधि में नए विहारों—स्थल संख्या 09, 10 और 11—का निर्माण किया गया तथा पहले से विद्यमान संरचनाओं की मरम्मत अथवा आंशिक पुनर्निर्माण हुआ। हालाँकि, पालकालीन स्थापत्य का सबसे महत्त्वपूर्ण नवाचार कई विहारों के केंद्रीय प्रांगणों में देवालयों की स्थापना थी। इनमें स्थल संख्या 01, 04, 05, 08 और

10 शामिल हैं। यह परिवर्तन बौद्ध अनुष्ठानिक प्रथाओं में व्यापक रूपांतरण को दर्शाता है। इसके परिणामस्वरूप विहार केवल आवासीय और शैक्षणिक परिसर तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसमें एक आंतरिक पवित्र केंद्र भी विकसित हुआ, जो पहले पृथक चैत्य परिसरों तक सीमित था। तेरहवीं शताब्दी ईस्वी से आरंभ होने वाला पालोत्तर काल पतन और परित्याग से चिह्नित है। इस अवधि में नई संरचनाओं का निर्माण नहीं हुआ और स्थल पर अधिवास कुछ ऐसे विहारों तक सीमित हो गया, जिनका सीमित उपयोग जारी रहा। स्थल संख्या 01 के स्तरिकीय अभिलेख में अधिवास के नौ स्तरों के साक्ष्य सुरक्षित हैं। इससे पता चलता है कि संस्था के पतन के बावजूद, अंतिम परित्याग तक विद्यमान संरचनाओं में निरंतर परिवर्तन और पुनः उपयोग होता रहा। स्थापत्य की दृष्टि से यह अंतिम चरण भले ही किसी नए निर्माण के लिए उल्लेखनीय न हो, किंतु स्थल के निक्षेपणात्मक इतिहास को समझने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मलबे के संचय और ऊपरी मंजिलों के ढहने से निचले निर्माण चरण ढक गए, जिसके परिणामस्वरूप वह स्तरिकीय क्रम सुरक्षित रहा, जिसे आधुनिक उत्खननों ने उजागर किया है।

विहारों का विकासक्रम: प्रांगण-परिसर से केंद्रीय देवालय तक

नालंदा का विहार वह स्थापत्य प्रकार है, जो संस्था के आवासीय एवं शैक्षणिक स्वरूप को सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी मानकीकृत योजना पाँचवीं शताब्दी ईस्वी तक स्थापित हो चुकी थी और पाल काल तक उल्लेखनीय निरंतरता के साथ प्रचलित रही। इस योजना में एक चतुर्भुजाकार प्रांगण होता था, जिसके चारों ओर निरंतर बरामदा बना होता था। बरामदे के पीछे कक्षों की पंक्तियाँ थीं, जिनके द्वार प्रांगण की ओर खुलते थे। प्रवेश के लिए एक ही मुख्य द्वार होता था तथा ऊपरी मंजिल तक पहुँचने के लिए सामान्यतः दक्षिण-पश्चिमी कोने में सीढ़ी बनाई जाती थी। यह योजना बौद्ध मठों की पूर्ववर्ती स्थापत्य व्यवस्थाओं से एक महत्त्वपूर्ण अंतर प्रस्तुत करती है, जहाँ प्रायः केंद्रीय स्तूप के चारों ओर परिसर का विन्यास किया जाता था। नालंदा में प्रांगण स्वयं मठवासी स्थान का प्रमुख संगठनकारी तत्त्व बन गया, जबकि स्तूप को पश्चिम की ओर स्थित पृथक चैत्य परिसर में स्थान दिया गया। स्थल संख्या 01, जिसका प्रारंभिक उत्खनन 1925 से 1935 के बीच किया गया था, विहार स्थापत्य के विकास के संबंध में सर्वाधिक विस्तृत साक्ष्य प्रस्तुत करता है। इस संरचना का आकार लगभग 71 × 100 फुट है और इसमें अधिवास के नौ अलग-अलग स्तरों के प्रमाण सुरक्षित हैं। इस कारण यह स्थल की सर्वाधिक जटिल स्तरिकीय संरचनाओं में से एक है। इसके प्रारंभिक चरण, जिन्हें गुप्तकाल के उत्तरार्ध का माना जाता है, मानक प्रांगण-योजना के अनुरूप हैं। इसमें स्तंभों से समर्थित बरामदे से घिरा एक केंद्रीय चतुर्भुजाकार प्रांगण था। उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशा में स्थित बरामदे की ओर कुल सत्ताईस कक्ष खुलते थे। प्रांगण का फर्श ईंटों से निर्मित था और उसे चार भागों में विभाजित किया गया था। इसके अतिरिक्त, वहाँ एक कुआँ, ईंटों से घिरा चूल्हा तथा दक्षिणी भाग में एक छोटा देवालय भी स्थित था। यह विन्यास संकेत देता है कि प्रांगण का उपयोग सामुदायिक गतिविधियों—जैसे भोजन पकाने, वस्तुओं के भंडारण और संभवतः शिक्षण—के साथ-साथ सीमित स्तर की अनुष्ठानिक गतिविधियों के लिए भी

किया जाता था। स्थल संख्या 01 का ऊर्ध्वाधर निर्माण-क्रम उन परिवर्तनों को उजागर करता है, जिन्होंने क्रमशः विहार के स्वरूप को बदल दिया। पाल काल में प्रांगण के भीतर एक केंद्रीय चैत्य का निर्माण किया गया। इस परिवर्तन ने मठवासी परिसर के भीतर उस स्थानिक संबंध को पुनः स्थापित किया, जिसमें स्तूप और मठ एक-दूसरे से संबद्ध होते थे। ऐसा संबंध पहले के बौद्ध स्थलों की विशेषता था। केंद्रीय देवालय के निर्माण के लिए प्रांगण के स्तर को ऊँचा किया गया। स्तरिकीय अभिलेख में मलबे की परतों से अलग-अलग अनेक फर्श-स्तरों का मिलना इस प्रक्रिया का प्रमाण प्रस्तुत करता है। स्थल संख्या 01 के पालकालीन अधिवास-क्रम में केंद्रीय चैत्य के कम-से-कम तीन निर्माण चरण शामिल हैं। प्रत्येक चरण में प्रांगण का स्तर ऊँचा किया गया तथा उसके अनुरूप आसपास की परिधि-दीवार की ऊँचाई भी बढ़ाई गई। यह क्रमिक विस्तार दर्शाता है कि देवालय का निर्माण एक बार की घटना नहीं था, बल्कि वह निरंतर भक्ति और समय-समय पर नवीनीकरण का केंद्र बना रहा। स्थल संख्या 04 से प्राप्त साक्ष्य स्थल संख्या 01 में देखी गई प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं और उसे अधिक व्यापक संदर्भ प्रदान करते हैं। 1916 से 1930 के बीच उत्खनित इस संरचना को नालंदा का सबसे बड़ा विहार बताया गया है। स्थल संख्या 01 की भाँति इसमें भी अधिवास के नौ चरण दिखाई देते हैं। 1925–26 के उत्खनन प्रतिवेदन में निचले और ऊपरी दोनों स्तरों पर दोहराई गई कोने की सीढ़ी मिलने का उल्लेख है, जो एक ही स्थान पर निर्मित पुराने और नए मठों का संकेत देती है। निचले स्तर की सीढ़ी में एक खिड़की थी, जिसकी चौखट का निचला भाग तीव्र ढलान वाला था। इसका उद्देश्य बाहरी मुखभाग में ऊँचाई पर स्थित एक उद्घाटन से प्रकाश को भीतर आने देना था। यह विवरण दर्शाता है कि कक्षों और बरामदों की पर्यावरणीय परिस्थितियों पर सावधानीपूर्वक ध्यान दिया गया था। स्थल संख्या 04 के दक्षिणी आधे भाग में ऊपरी स्तरों को अपेक्षाकृत अक्षुण्ण रखा गया, जबकि उत्तरी आधे भाग में निचले स्तरों को उजागर किया गया। यह व्यवस्था कालक्रमिक अनुक्रम को आगंतुकों के सामने प्रस्तुत करने के उद्देश्य से अपनाई गई थी। विहारों में पालकालीन परिवर्तन केवल स्थापत्य संबंधी नहीं थे, बल्कि वे मठ की अनुष्ठानिक व्यवस्था में आए बदलावों को भी दर्शाते हैं। प्रांगण में देवालय की स्थापना ने विहार को निवास और शिक्षण के स्थान से आगे बढ़ाकर व्यक्तिगत तथा सामुदायिक भक्ति के स्थल में भी परिवर्तित कर दिया। इस विकास की व्याख्या मठवासी पाठ्यक्रम में वज्रयान साधना के व्यापक समावेश के साक्ष्य के रूप में की गई है। इसके अंतर्गत वे अनुष्ठान, जो पहले पृथक मंदिरों में संपन्न होते थे, विहार के दैनिक जीवन का हिस्सा बन गए। स्थापत्य की दृष्टि से इसका परिणाम विहार और चैत्य के बीच कार्यात्मक अंतर का धुँधला पड़ना था। गुप्तकालीन विन्यास में ये दोनों प्रकार स्पष्ट रूप से अलग थे, किंतु बाद में उनके कार्यों का पारस्परिक अभिसरण हुआ। इस परिवर्तन का दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया में बौद्ध मठवासी स्थापत्य के आगे के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा।

चैत्य का विकासक्रम: स्थल संख्या 03 के सात निर्माण चरण

यदि विहारों का विकासक्रम मठवासी स्थान के क्रमिक पवित्रीकरण को दर्ज करता है, तो स्थल संख्या 03 का चैत्य-क्रम स्वयं पवित्र स्थान के रूपांतरण को प्रस्तुत करता है। वर्तमान में स्थल संख्या 03 के रूप में पहचाना जाने वाला स्मारक नालंदा का सबसे प्राचीन और निरंतर परिवर्तित किया गया स्मारक है। इसका प्रारंभ एक साधारण स्तूप के रूप में हुआ और सात क्रमिक निर्माण चरणों के माध्यम से यह चतुर्दिक विन्यास वाले पञ्चायतन चैत्य में विकसित हुआ। यह क्रम भारत में बौद्ध मंदिर स्थापत्य के विकास का सबसे पूर्ण स्तरिकीय अभिलेख प्रस्तुत करता है। साथ ही, यह यूनेस्को के नामांकन में प्रस्तुत उस दावे का अनुभवजन्य आधार भी है, जिसके अनुसार नालंदा चैत्य के एक विशिष्ट स्थापत्य प्रकार के रूप में उद्भव का प्रमुख केंद्र था। स्थल संख्या 03 का सबसे प्रारंभिक चरण तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व का अशोककालीन स्तूप है। यह ईंट और पलस्तर से निर्मित अर्धगोलाकार संरचना थी, जिसमें संभवतः शारिपुत्र के अवशेष प्रतिष्ठित किए गए थे। दूसरे और तीसरे चरण, जिन्हें ईस्वी संवत् के आरंभ से पूर्व तथा उसके बाद की शताब्दियों का माना जाता है, में नए आवरण जोड़कर स्तूप का विस्तार किया गया। यह प्रथा पहले से विद्यमान पवित्र संरचनाओं का विस्तार करके पुण्य अर्जित करने की व्यापक बौद्ध परंपरा के अनुरूप थी। चौथा चरण, जो गुप्तकाल का है, एक निर्णायक स्थापत्य परिवर्तन को दर्शाता है। इस चरण में स्तूप को एक बड़ी संरचना के भीतर आवृत्त किया गया, जिसके कोने बाहर की ओर निकले हुए थे। यह उस चतुर्दिक विन्यास का पहला संकेत था, जो स्मारक के अंतिम स्वरूप की प्रमुख विशेषता बना। पाँचवें और छठे चरण में इस योजना को और विकसित किया गया। एक ऊँचे चबूतरे के चारों कोनों पर सहायक देवालय जोड़े गए तथा केंद्रीय देवालय के चारों ओर परिक्रमा-पथ (प्रदक्षिणापथ) बनाया गया। सातवें और अंतिम चरण में, जिसे सातवीं शताब्दी ईस्वी अथवा उसके बाद का माना जाता है, स्तूप का पूर्ण विकसित पञ्चायतन चैत्य में रूपांतरण संपन्न हुआ। इस चैत्य की चतुर्दिक योजना में एक केंद्रीय देवालय के चारों ओर वर्गाकार चबूतरे के कोनों पर चार सहायक देवालय स्थित थे। यह पूर्ववर्ती स्तूप-रूप से एक महत्त्वपूर्ण विचलन था। अब केंद्रीय देवालय में अवशेष-स्तूप के स्थान पर बुद्ध की प्रतिमा प्रतिष्ठित थी और परिक्रमा-पथ को इस प्रकार पुनर्व्यवस्थित किया गया कि श्रद्धालु अवशेषों के बजाय बुद्ध की प्रतिमा की परिक्रमा कर सकें। यह स्थापत्य परिवर्तन बौद्ध धार्मिक व्यवहार में अवशेष-पूजा से प्रतिमा-पूजा की ओर व्यापक संक्रमण के अनुरूप था। पहली सहस्राब्दी ईस्वी के मध्यवर्ती शताब्दियों में बौद्ध जगत के विभिन्न क्षेत्रों में इस संक्रमण के प्रमाण मिलते हैं। स्थल संख्या 03 से प्राप्त स्तरिकीय साक्ष्यों की पुष्टि उसके आधार के आसपास समूहों में स्थित संबद्ध लघु स्तूपों से भी होती है। इनकी संख्या सैकड़ों में है। इन्हें सदियों के दौरान तीर्थयात्रियों द्वारा स्थापित किया गया था और कुछ मामलों में बाद के निर्माण चरणों के दौरान इन्हें मुख्य चैत्य की संरचना में सम्मिलित कर लिया गया। स्तूप के उत्तर-पश्चिमी भाग के उत्खनन से बड़ी संख्या में लघु स्तूपों के साथ-साथ मुख्य संरचना के निर्माण की तीन परतें प्राप्त हुईं। इनसे स्थापत्य अवशेषों के आधार पर पुनर्निर्मित किए गए क्रम की पुष्टि होती है। इस प्रकार, लघु स्तूप काल-निर्धारण के सहायक साधन के रूप में कार्य करते हैं। उनकी शैलीगत और अभिलेखीय विशेषताओं का मुख्य संरचना के विभिन्न चरणों के साथ मिलान किया जा सकता है, जिससे चैत्य के कालक्रम की स्वतंत्र पुष्टि प्राप्त होती है। स्थल संख्या 03

का महत्त्व उसके अपने स्थापत्य इतिहास तक सीमित नहीं है। सातवीं शताब्दी में नालंदा में विकसित चतुर्दिक विन्यास वाले चैत्य ने पूरे एशिया में बौद्ध मंदिर निर्माण के लिए एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया। यूनेस्को के नामांकन के आईकॉमॉस मूल्यांकन में उल्लेख किया गया है कि नालंदा के चैत्य ने "पूर्वी, दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी एशिया के बौद्ध मंदिरों को प्रभावित किया" तथा पञ्चायतन स्वरूप ने बौद्ध पवित्र स्थापत्य की प्रमुख अभिव्यक्ति के रूप में "परंपरागत रूप से प्रभावी स्तूप का स्थान ले लिया"। अतः स्थल संख्या 03 का स्तरिकीय क्रम केवल एक स्थापत्य प्रकार के स्थानीय विकास का दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि उस स्थापत्य शब्दावली के उद्भव का भी प्रमाण है, जिसने कई शताब्दियों तक बौद्ध पवित्र स्थलों के स्वरूप को प्रभावित किया।

विमर्श: संस्थागत इतिहास के स्रोत के रूप में स्तरिकी

स्थल संख्या 01 और स्थल संख्या 03 के ऊर्ध्वाधर निर्माण-क्रम का संयुक्त अध्ययन स्थापत्य स्वरूप और संस्थागत व्यवहार के बीच ऐसे संबंध का संकेत देता है, जिसकी नालंदा पर उपलब्ध विद्वत् साहित्य में अभी तक पर्याप्त पड़ताल नहीं की गई है। विहारों का विकासक्रम प्रांगण के सामुदायिक स्थान से पवित्र परिसर में रूपांतरण को दर्ज करता है। पाल काल में केंद्रीय देवालय की स्थापना इस परिवर्तन का प्रमुख संकेत है। इसके समानांतर, चैत्य का विकासक्रम अवशेषों को सुरक्षित रखने वाले स्तूप से बुद्ध की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने वाले मंदिर तक के संक्रमण को दर्शाता है, जिसमें केंद्रीय अवशेष के स्थान पर केंद्रीय प्रतिमा स्थापित हुई। दोनों विकासक्रम अंततः एक समान स्थापत्य समाधान की ओर संकेत करते हैं: एक केंद्रीय, आवृत्त देवालय, जिसके चारों ओर परिक्रमा-पथ हो—चाहे वह विहार के प्रांगण के भीतर हो अथवा चैत्य के चबूतरे के भीतर। इस अभिसरण को स्थापत्य रूपों के साधारण प्रसार के रूप में समझने के बजाय बौद्ध संस्थागत जीवन में आए परिवर्तन की भौतिक अभिव्यक्ति के रूप में देखना अधिक उपयुक्त है। गुप्तकालीन महाविहार स्पष्ट स्थानिक पदानुक्रम पर आधारित था। पूर्व की ओर स्थित विहारों में मठवासी समुदाय और उसकी शैक्षणिक गतिविधियाँ संचालित होती थीं, जबकि पश्चिम की ओर स्थित चैत्य पवित्र उपासना-स्थलों के रूप में कार्य करते थे और सार्वजनिक भक्ति के केंद्र थे। पालकालीन परिवर्तनों ने आवासीय परिसर के भीतर पवित्र संरचनाओं को सम्मिलित करके इस पदानुक्रम को प्रभावित किया। विहार के प्रांगण में केंद्रीय देवालय की स्थापना का अर्थ था कि मठवासी और सामान्य जन के स्थानों के बीच तथा निवासी समुदाय और दर्शनार्थ आने वाले श्रद्धालुओं के बीच की सीमा पहले की तुलना में कम स्पष्ट रह गई। विहार ऐसा स्थान बन गया, जहाँ मठवासी समुदाय उन अनुष्ठानों को भी संपन्न कर सकता था, जिनके लिए पहले पृथक चैत्य परिसर में जाना आवश्यक होता था। इस स्थापत्य विकास का महाविहार के पतन को समझने के लिए भी महत्त्व है। यूनेस्को का नामांकन तेरहवीं शताब्दी में नालंदा के परित्याग का कारण बाहरी विनाश को मानता है। स्थल संख्या 01 सहित कई स्थलों पर अग्निकांड के प्रमाण भी उपलब्ध हैं। किंतु स्तरिकीय अभिलेख यह भी संकेत देता है कि अंतिम विनाश से बहुत पहले संस्था आंतरिक रूपांतरण की प्रक्रिया से गुजर रही थी। विहारों के प्रांगणों में छोटे देवालयों और लघु पूजोपहारात्मक

संरचनाओं की बढ़ती संख्या, नए निर्माणों के लिए फर्श के स्तरों को ऊँचा करना तथा मौजूदा संरचनाओं में बार-बार परिवर्तन करना—ये सभी ऐसे समुदाय की ओर संकेत करते हैं, जो अपनी आवासीय या शैक्षणिक क्षमता का विस्तार करने के बजाय मौजूदा स्थानों के अनुष्ठानिक विकास में पर्याप्त संसाधन लगा रहा था। यह बदलती धार्मिक संवेदनाओं के अनुरूप एक सशक्त अनुकूलन था अथवा संस्था के मूल उद्देश्यों से संसाधनों का विचलन—इस प्रश्न का समाधान केवल स्थापत्य साक्ष्यों के आधार पर नहीं किया जा सकता। फिर भी, स्तरिकीय अभिलेख इस प्रश्न को अधिक सटीकता के साथ प्रस्तुत करने की अनुमति देता है। इस विश्लेषण का पद्धतिगत निहितार्थ यह है कि नालंदा की स्थापत्य स्तरिकी को केवल काल-निर्धारण के साधन के रूप में नहीं, बल्कि संस्थागत इतिहास के प्राथमिक स्रोत के रूप में देखा जाना चाहिए। स्थल संख्या 01 जैसी संरचना के निर्माण चरणों का क्रम उन निर्णयों को अपने भीतर समाहित करता है, जो मठवासी समुदाय ने सदियों के दौरान स्थान, पहुँच और अनुष्ठान के संबंध में लिए थे। ये निर्णय मनमाने नहीं थे; वे संरक्षण एवं राजकीय आश्रय, धार्मिक सिद्धांतों और अन्य संस्थाओं के साथ प्रतिस्पर्धा में होने वाले परिवर्तनों के प्रत्युत्तर में लिए गए थे। इसलिए स्थापत्य अभिलेख संस्थागत रणनीति का भी अभिलेख है। स्तरिकी का अध्ययन करने वाले शोधकर्ता का कार्य इस अभिलेख को उसी सावधानी से समझना है, जिस सावधानी से अभिलेखविद् किसी शिलालेख का विश्लेषण करता है।

निष्कर्ष

स्थल संख्या 01 और स्थल संख्या 03 के स्तरिकीय विश्लेषण से नालंदा के विहारों एवं चैत्यगृहों का जो स्थापत्य विकास सामने आता है, वह उन दो स्थापत्य प्रकारों के अभिसरण की प्रक्रिया को दर्ज करता है, जो गुप्तकाल में एक-दूसरे से स्पष्ट रूप से भिन्न थे। मूलतः आवासीय एवं शैक्षणिक प्रयोजनों के लिए निर्मित प्रांगण-परिसर के रूप में कार्य करने वाला विहार पाल काल में केंद्रीय देवालय से युक्त हो गया। इस प्रकार वह एक मिश्रित स्थान में परिवर्तित हुआ, जहाँ मठवासी जीवन और अनुष्ठानिक भक्ति दोनों के लिए व्यवस्था उपलब्ध थी। दूसरी ओर, मूलतः अवशेषों को प्रतिष्ठित करने वाले स्तूप के रूप में निर्मित चैत्य सात निर्माण चरणों से गुजरते हुए बुद्ध की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने वाले पञ्चायतन मंदिर में विकसित हुआ और पूरे एशिया में बौद्ध मंदिर स्थापत्य के लिए एक आदर्श बन गया। ये परिवर्तन केवल भवन-योजना के प्रकारों में ही नहीं, बल्कि निर्माण, मरम्मत और रूपांतरण के उन ऊर्ध्वाधर क्रमों में भी स्पष्ट हैं, जिन्हें भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के उत्खननों ने प्रलेखित किया है। नालंदा का स्तरिकीय अभिलेख अभी तक पूर्णतः प्रकाशित नहीं हुआ है। इस शोधपत्र में उद्धृत अधिकांश साक्ष्य मूल उत्खनन प्रतिवेदनों के बजाय यूनेस्को के नामांकन दस्तावेज़ से प्राप्त हुए हैं। भविष्य के शोध में सभी ग्यारह विहारों और चौदह मंदिरों के चरणवार आँकड़ों के व्यवस्थित प्रकाशन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके साथ ही, संरक्षित स्थल के आसपास स्थित अनुत्खनित टीलों से प्राप्त ईंटों और गारे के नमूनों पर वैज्ञानिक काल-निर्धारण विधियों का प्रयोग भी आवश्यक है। इस प्रकार का कार्य स्थापत्य चरणों का महाविहार के राजनीतिक और संस्थागत इतिहास के साथ अधिक

सटीक सहसंबंध स्थापित करने में सहायक होगा तथा स्थापत्य परिवर्तन और अनुष्ठानिक रूपांतरण के पारस्परिक संबंध के विषय में यहाँ प्रस्तुत परिकल्पनाओं की जाँच करने का अवसर प्रदान करेगा। हालाँकि, एक तथ्य पहले से स्पष्ट है: नालंदा की स्थापत्य स्तरिकी बौद्ध संस्थागत इतिहास के उपलब्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। चैत्य निर्माण का सात शताब्दियों में विस्तृत क्रम तथा विहारों के अधिवास के नौ स्तरों का अभिलेख एक ऐसा कालक्रमिक विवरण प्रस्तुत करता है, जिसकी बौद्ध जगत में तुलना करना कठिन है। इस अभिलेख का सावधानीपूर्वक अध्ययन केवल एक स्थापत्य प्रकार के इतिहास को ही पुनः प्राप्त नहीं करता, बल्कि पवित्रता के साथ एक समुदाय के बदलते संबंधों के इतिहास को भी उजागर करता है।

संदर्भ सूची

आईकॉमॉस। (2016)। इवैल्यूएशन्स ऑफ नॉमिनेशन्स ऑफ कल्चरल एंड मिक्स्ड प्रॉपर्टीज़ (WHC/16/40.COM/INF.8B1)। यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर।

आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया। (1927)। एनुअल रिपोर्ट 1925–26: सेंट्रल सर्कल। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस।

आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया। (2016)। डॉक्यूमेंटेशन ऑफ एक्सकैवेटेड रिमेन्स ऑफ नालंदा महाविहार (अप्रकाशित वास्तुशिल्पीय प्रलेखन, यूनेस्को नामांकन दस्तावेज़ WHC/16/40.COM/INF.8B1 में उद्धृत)।

यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर। (2016a)। आर्कियोलॉजिकल साइट ऑफ नालंदा महाविहार (नालंदा यूनिवर्सिटी) एट नालंदा, बिहार (नामांकन दस्तावेज़)।

यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर। (2016b)। निर्णय 40 COM 8B.20 (विश्व धरोहर समिति का चालीसवाँ सत्र, इस्तांबुल)।

यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर। (2016c)। नालंदा (भारत), संख्या 1502 (सलाहकार निकाय का मूल्यांकन, आईकॉमॉस)।

सिंह, ए. के., एवं अन्य। (2019)। नालंदा से प्राप्त पुरातात्त्विक ईंटों की एएमएस डेटिंग। प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन नेशनल साइंस अकादमी, 85(2), 1–12।

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 3

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 4

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 3

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 3–5

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 4–5

[1] वही, पृ. 5

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 1927, पृ. 57

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 5

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 4

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 1927, पृ. 57–58

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 5

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 6

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 2016, पृ. 30

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 7

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 1927, पृ. 57

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 5

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 2016, पृ. 30

[1] वही, पृ. 31

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 5

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 2016, पृ. 31

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 6

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 1927, पृ. 58

[1] वही, पृ. 58

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 16

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 6

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 16

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 5

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 7

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 5

[1]आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 2016, पृ. 32

[1] वही, पृ. 32

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 5

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 7

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 5

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 2016, पृ. 33

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 7

[1] वही, पृ. 7

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 5

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 7

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 5

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 6

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 2016, पृ. 30

[1] आईकॉमॉस, 2016, पृ. 6

[1] आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 2016, पृ. 31

[1] यूनेस्को वर्ल्ड हेरिटेज सेंटर, 2016, पृ. 6